ISSN no. 2454-2695
Vol 7 Issue 7 May 2021

आदिवासी केंद्रित हिंदी उपन्यासों का सांस्कृतिक मूल्यांकन

डॉ. राठोड पुंडलिक

पोस्ट डॉक्टरोल फेलो
हिंदी विभाग
कर्नाटक केंद्रीय विश्वविद्यालय
कलबुरगी, कर्नाटक- 585367
Adhar No.219915054935
Email id: rathodpundlik@gmail.com

प्रस्तावना:

संस्कृति का अभ्युदय मानव विकास के साथ-साथ होता है । आदिवासी समाज की संस्कृति आज उन तत्वों को अपने में समाहित और संजोए रखी है जो मानव विकास के आरंभिक चरणों से परंपरा के रूप में चले आ रहे हैं । इस संस्कृति में ऐसी विशेषताएँ हैं जो इसे अन्य संस्कृति से अलग करती हैं और इस संस्कृति का जब तक हम पड़ताल अथवा विश्लेषण नहीं करते तब तक आदिवासी समाज को समझना भी कठिन हो जाता है । अतः जनजातीय सांस्कृतिक पहलूओं को समझना आवश्यक हो जाता है ।

भारतीय जनजातीय समूहों में लिखित परंपरा की तुलना में मौखिक परंपरा अधिक समृद्ध रही है जिसके अंतर्गत लोककथा, लोकनृत्य, लोकगीत, चित्रकला तथा उनके समूह गुणधर्मों के तत्व सम्मिलित होते हैं । सामूहिकता की परंपरा, सुख-दुःख, प्रकृति से निकटतम संबंध तथा प्रकृति के साथ उनके संवेदनात्मक संबंध के साथ-साथ उनकी आकांक्षाएँ, संघर्ष का मार्मिक उदघाटन उनके लोक साहित्य में होता है । भारत की सामसिक संस्कृति में आदिवासी संस्कृति का स्थान बहुत सम्मानजनक है, क्योंकि इनकी संस्कृति में प्रागैतिहासिक विशेषताएँ आज भी सुरक्षित हैं । सामूहिक नृत्य की वेशभूषा, नृत्य प्रणाली, केश-रचना, अलंकार, अस्त्र-शस्त्र, वाद्य साधन, गीत अंग-प्रत्यंग, गीतों में नखशिख वर्णन, अभिनय में प्रकृति में छुपा लालित्य, लय, नाद, वर्ण, आकार आदि विशेषताएँ आज भी हमारे लिए आश्चर्यजनक ही नहीं वरण आदरणीय है, जिनका हमें सम्मान के साथ संरक्षण करना आवश्यक है ।

ISSN no. 2454-2695
Vol 7 Issue 7 May 2021

लोकगीत:

आदिवासी संस्कृति के विविध पहलूओं में लोकगीत महत्वपूर्ण हैं । लोककथा, कहावतों तथा संस्कृति के अन्य पक्ष की तुलना में लोकगीतों में अधिक भावोत्कर्ष होता है । लोकगीत भावावेग की ही लहरियाँ है जो ह्रदय से अंकुरित होकर शब्दमय तथा रागमय रूप में व्यक्त होती है । भारतीय आदिवासी समुदाय अनेक क्षेत्र, भौगोलिक स्थिति, भाषा, बोली तथा विभिन्न परंपराओं में विभक्त हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि इनके लोकगीतों द्वारा हम अनेक क्षेत्रों, भाषा तथा बोलियों का सामाजिक, सांस्कृतिक एवं समाजशास्त्रीय अध्ययनों द्वारा सकारात्मक पहलूओं तक पहुँच सकते हैं । “लोकगीतों का आदिवासी जीवन से घनिष्ठ संबंध होता है । इनमें आदिवासी समाज और संस्कृति का प्राचीन गौरव आदर्श प्रत्यक्ष रूप में व्यंजित होता है । एक-एक गीत में कितना उच्च भाव भरा हुआ है, यह इन गीतों से विदित होता है । आदिवासियों का गौरवपूर्ण इतिहास, उनकी सांस्कृतिक परंपराएँ, उनकी देवी-देवताओं के प्रति आस्था, मेले, त्यौहार तथा पुत्र, जन्म, विवाह आदि उत्सवों पर स्वच्छंद भावावेग और विशेषकर स्त्रियों की पोषकों के आभूषणों की झनकार सभी ने लोकगीतों को जन्म देने में विशिष्टता उत्पन्न की है ।”[1]

इन लोकगीतों में समय के साथ परिवर्तन भी आता गया है । परिस्थिति के अनुसार तथा जीवन प्रक्रिया की चुनौतियों के अनुसार गीतों के विषयवस्तु में परिवर्तन होता गया है। जब काल पड़ा तब गीतों की विषयवस्तु अकाल हो गया जिस पर अनेक गीत गाए गए । अकाल के बाद सड़कों पर पत्थर तोड़ती स्त्रियाँ अपने गीतों में परिस्थितियों का वर्णन करती हैं-

“हाय रे गिट्टी का फोरै राम

देश कर जिया काल पड़ा रे

मिट्टी का फोरै रे !

दिन भर तो मिट्टी फोरैवें

देवै बारा आने रेट

ऐसी गिरानी माँ, बाबू !

गरीब चलायन पेट

हाय रे गिट्टी का फोरै राम !”[2]

ISSN no. 2454-2695
Vol 7 Issue 7 May 2021

इस गीत में न अतीत है न ही प्राकृतिक संबंध । आर्थिक स्थिति से जर-जर समाज अपनी स्थिति को गीतों द्वारा उजागर कर रहा है । कहना होगा कि किसी भी समाज में गीत भी स्थिति के अनुसार बदलते जाते हैं । अतः समाज में आर्थिक स्थिति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है यदि आर्थिक स्थिति में परिवर्तन हुआ तो सांस्कृतिक स्थति में भी परिवर्तन होना संभव हो जाता है ।

जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि- “आदिवासी समाज में से लोकगीत और नृत्य निकाल दिए जाए तो फिर इनकी संस्कृति एवं सभ्यता चार-दीवारी के बची शहरी संस्कृति की तरह सिनेमा एवं होटलों के प्यालों में ही सीमित हो जाएगी और उनका जीवन शिथिलता तथा कृत्रिमता की ओर अग्रसर हो जाएगा ।”[3] यहाँ एक सवाल उभरता है कि नीति निर्माता अथवा सभ्य समाज आदिवासी संस्कृति को संरक्षण प्रदान करना चाहता है । वह कहना चाहता है कि आदिवासी समाज यदि शहरी सभ्यता में सम्मिलित होगा तो उनकी संस्कृति नष्ट हो जाएगी किंतु जहाँ जीवन जीने के सारे मार्ग बंद कर दिये गए हों, वहाँ कैसे जीया जाय ? परंपरागत वनाधिकार, भूमि, जल, यहाँ तक कि हवा को भी प्रदुषित कर दिया गया हो और ऐसी स्थिति में आदिवासी समाज अपनी संस्कृति बचाने हेतु वहीं पड़ा रहे ? अथवा वैकल्पिक अवसरों की तलाश में नगरों में वन्यजीवन से अधिक सुविधा से युक्त जीवन जीकर सुखी रहे अथवा अपनी स्थिति से संतुष्ट रहे तब सांस्कृतिक पहलूओं को बचाना ही महत्वपूर्ण नहीं माना जाएगा क्योंकि संस्कृति से भी अधिक महत्वपूर्ण जीवन है, जिंदा रहना है ।

आज स्वयं को सभ्य समझने वाला समाज अपनी प्रागैतिहासिक संस्कृति को भूल चुका है क्योंकि यह उसकी विकासावस्था के अनुसार हुआ आदिवासी समाज के साथ भी यदि यही हो रहा है तो कोई अनुचित नहीं है ।

आदिवासी लोकगीतों की विषयवस्तु समय तथा स्थिति के अनुसार बदलती गयी है । आजादी से पूर्व के गीतों में विदेशी जातियों से संघर्ष एवं सामंती शोषण की गाथाओं पर आधारित वीर रस से ओजपूर्ण गीतों की भरमार रही है । जिसमें उनके शस्त्र- बंदूक, तीर, कमान, ढाल, गूलेल आदि का वर्णन होता है । उसी प्रकार प्राकृतिक आपदाओं के समय अलग विषयवस्तु, वनोपज संग्रहण के समय भिन्न, शिकार के समय भिन्न-भिन्न ।

यदि हम लोकगीतों का वर्गीकरण करते हैं तो हमें संस्कार संबंधी गीत, व्यावसायिक गीत, आवसरिक गीत, मनोरंजनात्मक गीत आदि श्रेणियों का परिचय मिलता है । **संस्कार संबंधी गीतों में** जन्म, उपनयन, विवाह और मृत्यु इन प्रमुख संस्कारों को महत्व दिया जाता

ISSN no. 2454-2695
Vol 7 Issue 7 May 2021

है । **व्यावसायिक गीतों में** जीविका संबंधी तथा व्यवसाय करते समय श्रम परिहार निमित्त गाये गए गीत जिनमें- कृषि, कुआँ, जल, चाकी, मजदूरी आदि विषयवस्तु से संबंधित गीत होते हैं । **आवसरित गीतों** में देवी-देवताओं से संबंधित गीत प्रमुख होते हैं । इसी श्रेणी में मेले, त्यौहार, व्रत, आस्था, भजन तथा तीर्थ यात्रा के भी गीत गाए जाते हैं । **मनोरंजनात्मक गीतों में** श्रृंगार रस के गीत जिसमें रूप, संयोग, वियोग, प्रेम तथा नृत्य गीत, नाट्य गीत, ऋतु संबंधी गीत और पारिवारिक भोज्य पदार्थ संबंधी गीत इसी श्रेणी में रखे जा सकते हैं ।

कहने का तात्पर्य यह है कि आदिवासी समाज में लोकगीत परंपरा बहुत ही समृद्ध है । जिसमें उनका संपूर्ण जीवन, इतिहास, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक पहलू झलकते हैं । व्यावसायिक गीतों का एक उदाहरण जो उनकी वर्तमान स्थिति को अभिव्यंजित करता है तथा चुनौती का सामना करने का साहस भी प्रदान करता है-

“बिर तबु चन तन

आते तबु पीड़ि तन

दारु बु रोबाया

सादी...सादी...

उली कण्टड कुद बारु

दारु बू रोबाया ।...”[4]

जंगल खत्म हो रहा है । धरती बंजर हो रही है । अतः गाछ रोपेंगे । टाँड के आड़ में रोपेंगे, कतार-कतार, आम, कटहल, जामुन, कुसुम, फरसा, पीपल आदि-आदि । गाछ रोपेंगे । आज समस्त आदिवासी समुदायों में इस प्रकार के गीत अवश्य मिल जाएंगे क्योंकि जंगल तथा भूमि की प्रधान समस्याओं से यह समाज त्रस्त है । गीत में जितने भी वृक्षों के नाम है उन वृक्षों से इन समुदायों का सांस्कृतिक जुड़ाव है जो गीतों में अभिव्यक्त हो रहे हैं ।

इस प्रकार के अनेक गीतों के संदर्भ दिये जा सकते हैं । आदिवासी साहित्य का मौलिक रूप आदिवासी लोकगीत ही है । इन गीतों का संपादन होना अति आवश्यक है । संपादन, अनुवाद तथा उनका समाजशास्त्रीय अध्ययन करने से हम वास्तविक आदिवासी समाज को समझ पाएंगे अन्यथा हमारे प्रयास अधूरे रह जाएंगे ।

ISSN no. 2454-2695
Vol 7 Issue 7 May 2021

लोकनृत्य:

सृजनात्मक सौंदर्य कला का ही दूसरा नाम है जिसका सृजन गुफा निवासियों द्वारा अवकाश के समय चित्र अथवा मूर्तियाँ बनाकर किया गया था । भाषा के अभाव में मन के भावों को व्यक्त करने हेतु उसने अभिनय का सहारा लिया होगा और संभवतः अभिनय से ही अंग परिचालन और भावाभिव्यक्ति की परंपरा बही होगी । पक्षियों का कलरव, नदियों का कलकल, झरनों का झुनझन ने संगीत पक्ष को जन्म दिया होगा । फूलों और इंद्रधनुष्य के अनुसार सजने की प्रवृत्ति का जन्म हुआ होगा । प्रकृति के खुले आकाश के नीचे उसने रंगशाला का निर्माण किया होगा और वही से नृत्य का भी आरंभ हुआ होगा ।

आदिवासी का जीवन संगीत एवं नृत्य के बिना अधूरा है । उनका बोलना ही संगीत है और चलना ही नृत्य । आदिवासी नृत्य की उत्पत्ति के संदर्भ में श्रीचंद्र जैन ने एक आदिवासी लोक-कथा का संदर्भ दिया । "इंद्रराजा की पुत्री बिजली का श्यामलिया के साथ विवाह हुआ तब वधू बिजली ने बारातियों को नाचने हेतु मजबूर किया किंतु बाराती नाचना नहीं जानते थे तब...बारातियों के स्वप्न में एक देवलोक से वृद्ध उतरा जिसने कहा कि...जंगल में रीछों को देखकर तुम मदमाती चाल सीख सकते हो, कोयल की मधुरता से तुम रसीला गान सीख सकते हो, मृगों से तुम चाहों तो नाचने की अनेक विधियाँ समझ सकते हो, शेरों की दहाड़ से आगे बढ़ना और पीछे हटना भी सरलता से सीखा जा सकता है । काले-काले मेघों का आकाश में छा जाने पर मोर नाचते हैं तब उन्हें ध्यान से देखना समझना चाहिए, इस प्रकार तुम नाचना सीख सकते हो...कहते हुए देवलोक से आए वृद्ध अंतर्धान हो गए...सभी बाराती जान उठे ।...चारों तरफ आकाश में नाच गान हो रहा था, अनेक प्रकार के वाद्य बज रहे थे...ढोल, ढिमकी, सारंगी, थाली, लोटा, चिमटा, झालर, कटोरा, मटका, शंख, कड़ताल, बाँसुरी, अलगोजा, ढफला, ढफली, घुँघरूँ, रमलूना, शहनाई, रूप घंटा आदि कई वाद्य प्रकृति को मोहित कर रहे थे- इसमें मृग, रीछ, शेर, मोर, कोयल हाथी हजारों पशु-पक्षी नाच-गाकर आनंद को प्रकट कर रहे थे । स्वप्न में आकाश में नाचती परियों को देखकर सब बाराती नृत्य कला से परिचित हो गए...और नाचने लगे ।...वधु बिजली को...बोर, राखड़ी, झुमका, बिंदी, टोड़ी, नथ, टांगली, साख, पाटली, चूड़ियाँ, कंगन, लोड़िया, कड़ा, विटया, घुंघरिया, हँडिया, कंठिया, पावालिया, बिछिया आदि हजारों गहनों से सजाया गया ।"[5]

इस कथा से स्पष्ट हो जाता है कि आदिवासी नृत्य कला स्वयं विकसित होती रही है और आज की नृत्य कला की जननी बना । आदिवासी नृत्यों में प्राकृतिक तत्वों की प्रधानता है साथ-साथ उनमें धार्मिक गुणों का भी समावेश है । वे गीतों के साथ नृत्य कर अपने देवी-देवताओं को प्रसन्न करना चाहते हैं ।

ISSN no. 2454-2695
Vol 7 Issue 7 May 2021

आदिवासी नृत्य के प्रकार: आदिवासी नृत्य को सामूहिकता के आधार पर सात श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है । (1) **युवा नृत्य**-जिसमें एक युवा अथवा युवाओं का समूह गीत गाते हुए नृत्य करते हैं । (2) **युवती नृत्य**- जिसमें अकेली युवती अथवा युवतियों का सामूहिक नृत्य होता है जिसमें वादक पुरुष होता है । (3) **वयस्क पुरुष नृत्य**- इसमें भी व्यक्तिगत अथवा सामूहिक नृत्य होते हैं, जिसमें वादक पुरुष होते हैं । (4) **वयस्क महिला नृत्य**- इसमें एक महिला अथवा महिलाओं का सामूहिक नृत्य होता है, वादक भी एक अथवा अधिक हो सकते हैं । (5) **युवा और वयस्क पुरुषों का सामूहिक नृत्य** । (6) **युवती एवं वयस्क महिलाओं का सामूहिक नृत्य** (7) **युवा, युवती, महिला, पुरुष सभी का सामूहिक नृत्य**-जिसमें वादक भी अनेक होते हैं तथा नृत्य एक वृत्ताकार दायरे में लयबद्ध तरीके से नृत्य तथा रागमय स्वर में गायन दोनों साथ-साथ होता है और पहनावे एवं सजावट की सारी सामग्री प्रकृति से प्राप्त होती है ।

आदिवासी नृत्य की विशेषताएँ: यदि आदिवासी नृत्य की विशेषताओं की बात करें तो हम पाते हैं कि इनके नृत्य ओजपूर्णता, शक्ति, अंग-भंगिमा, लयबद्धता की दृष्टि से सरल प्रतीत होता है किंतु वास्तविकता में यह सरल नहीं होता है। नृत्य करते समय अनेक नृत्याकृतियाँ बनाना दूसरी विशेषता है जिसमें कतारबद्ध, वृत्ताकार, चौकोर, षड़ाकार, आयताकार की आकृतियाँ बनाते हुए अंग भंगिमाओं के गठन में चपलता, चुस्तता तथा अंग प्रत्यंग का विशिष्ट लय आश्चर्यजनक होता है । तीसरी विशेषता यह है कि इनके नृत्य में सहज स्वच्छंद भावना, स्त्री-पुरुषों की भावात्मक प्रतिक्रियाएँ स्वाभाविक रूप से झलकती है । चौथी विशेषता में नृत्य और गीतों में सरलता, एकरूपता, कभी-कभी सजावट नहीं होती है । यदि होती है तो सजावट अत्याधिक आकर्षक परंतु वादन अत्यंत सरल और प्राथमिक होता है । पाँचवी विशेषता यह है कि नृत्य के साथ-साथ क्रमबद्ध तरीके से गाए जाने वाले गीत अधिकतर शब्द प्रधान न होकर ध्वनि प्रधान होते हैं और प्रायः गूँज उत्पन्न करने वाले स्वर होते हैं । छठी विशेषता प्रकृतिमय सजावट की है । इस प्रकार जनजातीय नृत्य की अपनी एक विशिष्टता है । जिसकी विश्व की किसी नृत्यकला से तुलना हो सकती है ।

आदिवासी नृत्यों के विविध नामकरण तथा विशिष्ट समय पर विशेष सजावट का भी अपना महत्व होता है । श्रीचंद्र जैन ने सभी शास्त्रीय कला को प्राणवान बनाने वाली कला का दर्जा देते हुए कहा है कि- “जिस प्रकार वन की सौंधी-माटी नगर की चिकनी सड़कों को प्राणवती बनाती है, उसी प्रकार यह सहज नृत्यकला शास्त्रीय नृत्यों की आंतरिक भावानुभूति को निरंतर उद्वेलित करती रहती है । यही आदिवासी नृत्य कला का वैशिष्ट्य है ।”[6] जहाँ तक आदिवासी उपन्यासों का सवाल है तो प्रायः सभी उपन्यासों में गीत एवं नृत्य का चित्रण

ISSN no. 2454-2695
Vol 7 Issue 7 May 2021

हुआ है, क्योंकि गीत एवं नृत्य के बिना आदिवासी जीवन का चित्रण हो ही नहीं सकता । 'जंगल के फूल', 'जंगल के गीत', 'जंगल के आसपास', 'सूरज किरण की छाव', 'पठार पर कोहरा', 'ग्लोबल गाँव के देवता', 'मरंग गोंड़ा नीलकंठ हुआ' आदि उपन्यासों में त्य एवं गायन को उदघाटित किया गया है ।

कुछ कथा नायक लोकगीतों एवं लोकनृत्य को समाज जागृति का आधार बनाते हैं । 'जंगल के आसपास' उपन्यास का पात्र दिनेश जनजागृति हेतु **'करियाला'** नृत्य का सहारा लेता है । "करियाला जैसे लोकनृत्य का नए ढंग से विकास करना है । करियाला इस इलाके की जनता को जानने का अच्छा साधन साबित हो सकता है । लोकनृत्य के साथ-साथ लोककथाएँ तो उसमें होती ही हैं, बस उन कथाओं को आज की जिंदगी के अर्थों की तरफ मोड़ने की जरूरत है ।"[7] अतः दिनेश के निर्देशानुसार नृत्य का आयोजन होता है । नृत्य का वर्णन करते हुए लेखक लिखता है कि "युवतियों की एक पंक्ति समुद्र की एक लहर की तरह एक तरफ से दूसरी तरफ जाती और दूसरी तरफ से आने वाली युवकों की लहर को काटकर आगे निकल जाती । लोग मुग्ध होकर पंक्ति लहरों के इस कटाव को देख रहे थे और साजिंदे मस्त होकर साज बजा रहे थे । साजों के साथ गुंजने वाली गीत की कोई एक शब्द पंक्ति, कुछ इस तरह की ध्वनि के साथ गूँज रही थी-हाहा हाहा हो..हो ! हाहा हाहा हो...हो...!!"[8]

इस प्रकार अनेक उपन्यासों में नृत्य का संदर्भ मिलता है । 'जंगल के फूल' में अंग्रेज आक्रमण के बाद सामूहिक नृत्य का आयोजन होता है । "पुरुष सिर पर मोरपंख और जंगली भैंसों के सींग बाँधे थे । स्त्रियाँ अपनी पारंपारिक नृत्य पोषाक में सजी हुई थी ।"[9] कहना न होगा कि यह नृत्य परंपरा बहुत ही समृद्ध और प्रगतिशील है । जिसमें प्रकृति के साथ-साथ जीवन प्रक्रिया तथा भावात्मक लहरों के अनेक रूप विद्यमान हैं जो आज राष्ट्र की प्रमुख विशेषता है ।

चित्रकला और शैलचित्र:

चित्रकला किसी समाज के आंतरिक भावों को उद्धृत करती है । चित्रकला साहित्य के समान समाज एवं व्यक्ति की भावनाओं तथा संबंधों का मूर्त रूप होती है । प्राचीन काल में समाज ने अपने मनस्तत्वों को रूप प्रदान करने अथवा एक आकार देने हेतु रेखाचित्रों का सहारा लिया । कालांतर में शैलचित्रों का विकास हुआ । आदिवासी समाज प्राचीन काल में अपनी कला को शैलों अथवा चट्टानों पर चित्रों के रूप में उजागर करता था । इन चित्रों से

ISSN no. 2454-2695
Vol 7 Issue 7 May 2021

हमें उस काल की जीवन प्रक्रिया एवं सांस्कृतिक विशेषताओं की जानकारी प्राप्त होती है। एलोरा-अजंता तथा वन्य प्रांतों में अनेक गुफाओं में आदिम समाज द्वारा उकेरी गई चित्रकलाएँ आज हमारे लिए उस समाज के अध्ययन के स्रोत हैं। 'मरंग गोंड़ा नीलकंठ हुआ' का पात्र जाम्बीरा तथा उनका भाई एक घने जंगलों में जाते हैं। जहाँ एक प्राचीन गुफा में आदिवासियों द्वारा उकेरे गए चित्र दृष्टिगोचर होते हैं। "चूल्हे की आँच के प्रकाश में गुफा की दीवारों पर खुदे हुए विभिन्न प्रकार के शैलचित्र चमक उठे। तीर धनुष, हिरण, सांबर या बनैले सुअर, खुँखार जंगली भैंसे का शिकार करते जटानुमा लंबे-लंबे बालों वाले आदिवासी...वल्कल पहने हुए या पूरी तरह से नंगे...बाघ, भालू से हाथापाई करते हुए।"[10]

यदि हम इन शैलचित्रों को ऐतिहासिक समाजशास्त्रीय पद्धति से विश्लेषण करें तो हमें उस प्रागैतिहासिक काल के आदिवासी अथवा आदिम समाज का परिचय मिलता है। यह समाज पूर्णतः शिकार पर निर्भर था। कृषि का विकास नहीं हुआ था। अर्थात पूर्ववैदिक अथवा उत्तर वैदिक काल के संक्रमण का समय हो सकता है। उस समय ये आदिवासी पूर्णतः गुफाओं में वास करते थे और शिकार से उदर पोषण करते थे। शैलचित्रों से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय वनोपज अथवा प्राकृतिक खाद्य सामग्री का भी ज्ञान नहीं हुआ था। यदि ऐसा होता तो चित्रों में कहीं-न-कहीं इसका परिचय मिल जाता। तीसरी बात यह कि इनका जीवन अति चुनौतिपूर्ण था क्योंकि चित्रों में भयानक हिंस्र पशुओं से लड़ते आदिवासियों को दिखाया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि गुफा चित्र (शैलचित्र) हमें समाज अध्ययन के आधार प्रदान करते हैं।

चित्रों में अभिव्यक्त समाज आदिवासियों के पूर्वज हैं अथवा नहीं यह कहना कठिन है। उपन्यास में पात्र सवाल भी करता है। "क्या ये हमारे पूर्वज हैं बऊ ? जाम्बीरा ने जानना चाहा। "पता नहीं रे। हो भी सके हैं। सैकड़ों वर्षों से तो रह रहे हैं हम यहाँ। मरंग के इस घने जंगल में...वैसे ये भुइयाँ या सराफ भी हो सकते हैं।"[11] "हमारे पूर्वजों के आने के पहले तो वे ही रहा करते थे इधर। उन्हें मार भगाया था हमारे पूर्वजों ने।"[12] समाज का ऐतिहासिक संदर्भ हेतु शैलचित्र अति महत्वपूर्ण हैं। हाथी गुम्फा के शैलचित्र आज भी प्राचीन आदिवासी समुदाय का परिचय देते हैं। इन चित्रों से हम तत्कालीन समाज की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

शैली चित्रों के समान अन्य चित्रकलाएँ भी आदिवासी समाज की महत्वपूर्ण विशेषता है। आदिवासी महिलाओं द्वारा अपने वस्त्र पर बनाए गये चित्र तथा अपनी मिट्टी गारे से

ISSN no. 2454-2695
Vol 7 Issue 7 May 2021

बना घर की दीवारों पर अनेक प्राकृतिक वृक्षों तथा पत्तों से बने रंगों से बनाए गए चित्रों का विशेष महत्व है । "दीवारों पर काली मिट्टी के लेप सूखने के बाद उन पर सफेद मिट्टी का लेप चढ़ाया जाता है । फिर पूरी हथेलियों को नचा-नचाकर एक वृत्ताकार आकृति उभारी जाती है, जिनमें उनकी हथेलियों की छाप झलक मारती है । यह अदभुत हथेलियों की छापवाले चित्र न केवल दरो-दीवार पर बल्कि खेतों, खलियानों, जंगल-बगानों, खानों, नदी, नालों, चुआँ पझरा, स्रोतों, झरनों में हर कोई दिखाई देता है । कभी-कभी तो लगता है, यह धरती, सूरज, चाँद, सितारे, कई-कई सूरज, कई-कई चाँद, हमारा पूरा ब्रह्मांड, हमारी अपनी आकाश गंगा और पूरे कायनात की लाखों, करोड़ो आकाश गंगाओं के अंनत ब्रह्मांड, सब के सब स्त्री की हेथिलियों से गुमरे लेकर आदि-अंनत काल से नाचते जा रहे हैं । इस अलौकिक नाच पर भी एक स्त्री की ही घूमती हथेलियों की छाप है ।"[13] रणेंद्र द्वारा उद्धृत हथेलियों की छाप व छापों से बना वृत्ताकार भित्ति चित्र के लेखक की कल्पना के आधार पर इन चित्रों का सूक्ष्म अध्ययन किया जाय अथवा हथेलियाँ गड़ा कर उभारा गया पंजा तथा पंजे पर बना रेखाचित्र का सूक्ष्म विश्लेषण किया जाय तो शोध कार्य में एक नया शोध-आलेख ही बन जायेगा क्योंकि हथेलियों की हस्तरेखाओं का चित्र एवं ब्रह्मांड की कल्पना असीमित संभावनाओं को दर्शाता है । किंतु उन चित्रों की एक साधारण सी व्याख्या यह भी हो सकती है कि हथेलियों की उंगलियाँ समुदाय का प्रतीक है जो वृत्ताकार में नृत्य करता हुआ झूम उठा है और वन्य परितंत्र में विचरण कर रहा है । अर्थात वह केवल हथेलियों का ही चित्र नहीं बल्कि सामूहिक जीवन प्रणाली का प्रतिबिंब भी है ।

महिलाओं द्वारा बनाए गए चित्र का उदघाटन 'मरंग गोंड़ा नीलकंठ हुआ' में भी हुआ है । "तूने सामनेवाली दीवार पर लाल सफेद रंग से मोर उकेरा था न, मैं तो उसी पर मोहित हो गया था ।"[14] मयूर का रंग न ही लाल होता है और न ही सफेद किंतु चुनौतीपूर्ण जीवन का प्रतीक लाल रंग और शांतिमय जीवन का प्रतीक श्वेत रंग लेकर जंगलों में मयूर के समान नाचता, गाता आदिवासी समाज का यह एक अदभुत उदघाटन है । इसी उपन्यास की प्रमुख महिला पात्र सुकुरमुनी आगे चित्र बनाती है । जिसमें रंगों की अदभुत मिलावट दृष्टिगोचर होती है । "आधा दीवार लाल, आधा सफेद । सफेद में लाल रंग का बड़ा-सा मोर और लाल में सफेद रंग का । वाह ! कितना सुंदर ! लाल मिट्टी और सफेद चूने के घोल से बनाई थी न तू ।"[15] रंगों की मिलावट से एक और नया रंग बनाने की कला आदिवासी महिलाएँ खूब जानती हैं । "सरकारी डाक बंगले के बाहर एक साइकल का फटा पुराना टायर पड़ा मिला था । उसी को लड़काते-ढुकेलते खेलते पटकते ले आया था मेरा छोटा भाई । मैं उसे जलाकर उसकी

ISSN no. 2454-2695
Vol 7 Issue 7 May 2021

काली राख में तेल मिलाकर रख ली । जब भी चित्रकारी करती हूँ न, उसी से आँख, नाक, पैर वगैरह उकेरती हूँ, मोर, बाघ, भालू, हाथी, कबूतर आदि का । अगली बार मांगेः पोरेब के ठीक पहले रंग रोगन करते समय मैं तेरी झोपड़ी की दीवार पर एक बड़ा-सा बाघ उकेर दूँगी । ठीक है ?"[16] रंगों की नई खोज के साथ-साथ विशेषकर वन्य प्राणियों के चित्र बनाने की प्रवृत्ति आदिवासी चित्रकला की प्रमुख विशेषता है क्योंकि वन्य प्राणी इनकी जीवन प्रक्रिया के अभिन्न अंग हैं। इन प्राणियों के साथ आदिवासी समुदाय का भावात्मक और संवेदनात्मक संबंध होता है । अपने जीवन एवं संस्कृति में वे वन्य प्राणियों को संजाए रखना चाहते हैं । वन्य प्राणियों के अभाव में उनका जीवन अधूरा और संवेदनाएँ शून्य हो जायेगी।

प्राकृतिक दृश्य, सौंदर्यात्मक बिंब विधान की कल्पना तथा नदी, नाले, झरने, पेड़-पौधे के साथ-साथ वन्य प्राणियों से अपने संबंध बनाए रखते हुए तथा इन सभी जीव-जंतुओं का अलग-अलग अस्तित्व को सम्मानजनक रूप से स्वीकार करते हुए उनमें अपने जीवन को सार्थक एवं सफल बनाने की प्रधान प्रवृत्ति आज केवल आदिवासी समाज में ही दृष्टिगोचर होती है अन्य समाज में नहीं ।

पर्व एवं त्यौहार:

भारत देश में वर्ष में प्रत्येक ऋतु के प्रत्येक दिन कोई-न-कोई पर्व अथवा त्यौहार मनाया जाता है । जिसमें बहुत विविधता पायी जाती है । इस प्रकार जनजातीय समाज में भी पर्व एवं त्यौहार जिनकी गिनती करना भी असंभव तो नहीं किंतु कठिन अवश्य है । ये पर्व एवं त्यौहार उनकी संस्कृति के महत्वपूर्ण पहलू हैं । ये त्यौहार रीझरंग एवं मनोरंजन से ही नहीं वरन धार्मिक जीवन से भी जुड़े हैं । पर्व और त्यौहार का बेसब्री से इंतजार तथा अपनी निम्न आर्थिक स्थिति होने के बावजूद कर्ज लेकर भी मनाया जाता है । कहने का तात्पर्य यह कि इस समाज में त्यौहार का अत्यंत महत्व है ।

पर्व एवं त्यौहार की विभिन्नताओं में मा पर्व, सरहुल, खदी पर्व, सरहोई पर्व, फागुपर्व, भगोरिया, आखेट, मांगे पोरब आदि महत्वपूर्ण हैं ।

'करमा पर्व' प्रति वर्ष भादों माह में शुक्लपदी की एकादशी के दिन मनाया जाता है जो कृषि से संबंधित है । साथ-ही-साथ यह सौहार्द, सत्कर्म और सद्भावना का भी पर्व होता है । "करमा पर्व के द्वारा देवताओं के प्रति श्रद्धा अपने खेती के प्रति आस्था एवं परस्पर मिल-जुलकर रहने की प्रेरणा मिलती है । यह पर्व हमें आत्मसंयम रखने, धर्म के अनुसार आचरण करने महिलाओं का सम्मान करने ईर्ष्या-द्वेष से दूर रहने, क्षमाशील बनने, अपने परिश्रम से आगे बढ़ने, अपने पूर्वजों एवं अपनी परंपराओं से प्रेरणा लेते रहने, ईश्वर के प्रति अड़िग श्रद्धा

ISSN no. 2454-2695
Vol 7 Issue 7 May 2021

रखने तथा समाज के लिए लोगों के साथ मिल-जुलकर कार्य करने की प्रेरणा देता है ।"[17] अतः यह पर्व आदिवासी जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।

'सरहुल पर्व' आदिवासियों के नानाविध त्यौहार हैं और प्रत्येक का भिन्न-भिन्न महत्व है । छोटा नागपुर संस्थाल परगना के आदिवासियों द्वारा बड़े उत्साह से सरहुल को मनाया जाता है । उसी प्रकार '**खोदी'** उँराव जनजाति का प्रमुख पर्व है, जिसमें आने वाले वर्ष की संभावित भविष्यवाणी का अनुमान लगाया जाता है । '**सरगोई पर्व'** कार्तिक मास का त्यौहार है जो मवेशियों का पर्व कहलाता है । **'फागु पर्व'** फागुन महीने में मनाया जाता है । इसमें सेमर के वृक्ष में पुआल बांधकर पहान द्वारा आग लगाने का रिवाज है । इसकी प्रमुख विशेषता यह कि कुएँ से पानी निकालने पर प्रतिबंध होता है, दूसरे दिन शिकार करने जाते हैं । इस प्रकार की कई क्रियाएँ होती हैं ।

'भगोरिया पर्व' प्रमुख रूप से भील युवक-युवतियों और उनके बीच प्रणय संबंध का त्यौहार है । जो भगौरिया हाट में होता है अपने मन पसंद जीवन साथी को चुनने का यह एक अदभुत त्यौहार है । **'आखेट पर्व'** भी वर्ष में एक बार मनाया जाता है जिसमें सामूहिक शिकार किया जाता है । गाँव का प्रत्येक पुरुष आखेट में भाग लेता है किंतु यदि किसी परिवार के प्रमुख पुरुष का स्वास्थ्य ठीक नहीं है । वह सम्मिलित नहीं होता तब भी शिकार में उनकी भी बराबरी का हिस्सा होता है । यहाँ तक की आखेट में सम्मिलित होने वाले कुत्तों को भी बराबरी का हिस्सा दिया जाता है । यह महान प्रवृत्ति केवल आदिवासी समाज में ही दृष्टिगोचर होती है ।

लोक कथाएँ:

आदिवासी केंद्रित उपन्यासों में किसी-न-किसी रूप में लोक कथाओं का चित्रण अवशय होता है । क्योंकि आदिवासी समाज इन कथाओं द्वारा अपने इतिहास, अपने पूर्वजों की वीर गाथा तथा प्राकृतिक शक्तियों की स्मृतियाँ संजोए रखता है । इनकी कथाएँ कौतुहलपूर्ण होती हैं क्योंकि "चमत्कार इन आदिवासियों को अधिक प्रिय है । ये कथाएँ वैदिक साहित्य से प्रभावित हैं तथा विभिन्न भारतीय दर्शनों से भी इनका संबंध दिखाई देता है । सतत साहचर्य के कारण वृक्ष, पुष्प, पशु-पक्षी, नदियाँ-नाले, छोटे-बड़े पर्वत इन कथाओं के अभिन्न अंग बन गए हैं ।"[18] श्रीचंद्र जैन ने इन आदिवासी कथाओं के 43 प्रकार बताए हैं ।

ISSN no. 2454-2695
Vol 7 Issue 7 May 2021

जिनमें ऐसा कोई विषय नहीं है जो इनमें छूट गया है, अर्थात आदिवासी लोककथाओं का भंडार अति समृद्ध है ।

'अभिप्राय' लोककथा का एक विशिष्ट तत्व है । यही कथा में अलौकिकता उत्पन्न करता है तथा कथावस्तु में ऐसे कई परिवर्तनों को अनायास समाविष्ट कर देता है जो समाज विशेष की मान्यताओं की ओर संकेत करते हैं । लोककथाओं का कलात्मक कलेवर कई प्रकार के अभिप्रायों से निर्मित होता है और ये अभिप्राय ही कथा की एकरूपता को स्थापित करने में सहायक माने जाते हैं । इन कथाओं में सृष्टि संबंधी, देवी-देवता संबंधी, पशु-पक्षी, भूत-प्रेत, वृक्ष, अंधविश्वास, जादू-टोना, त्यौहार जैसी अनेक प्रकार की कथाएँ प्रचलित हैं ।

अन्य क्रियाकलाप:

आदिवासी संस्कृति के अनेक पहलू होते हैं जिनमें प्रमुख पहलों की चर्चा हो चुकी है । इनके अलावा आदिवासी समाज में शगुन-अपशगुन, गोदने की प्रवृत्ति, घोटुल प्रणाली तथा श्रद्धा-अंधश्रद्धाओं का भी प्रचलन होता है ।

'घोटुल' मध्य भारत के बस्तर जिला की आदिवासी समाज की प्रमुख प्रणाली है । जो प्रगतिशील तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से शिक्षा की संस्था भी है । इसमें गाँव के समस्त युवा-युवतियों की चतुर्दिक विकास तथा अपनी जीवन प्रक्रिया के साथ-साथ सांस्कृतिक संरक्षण की शिक्षा इसी संस्था से ग्रहण किया जाता है । बोली की विविधता के कारण विभिन्न आदिवासी समाज में भिन्न-भिन्न नाम से जाना जाता है । 'मुरिया' इसे घोटुल कहते हैं । मुंडा एवं 'हो' इसे **'गतिओरा'** कहते हैं । उँराव इस संस्था को **'धुमकुरिया'** कहते हैं । असम के नागा जनजाति में यह **'याकिचुकी'** नाम से जाना जाता है । इस संस्था में पूर्णरूपेण अविवाहित युवा-युवती ही सम्मिलित हो सकते हैं । विवाहितों का यहाँ प्रवेश निषिद्ध है । रात के समय यह युवा वर्ग जीवनोपयोगी तथा कई महत्वपूर्ण जीवन प्रक्रिया के राज सीखते हैं और सामाजिक तथा धार्मिक तथ्यों और विधि-विधान, रीति-रिवाज, आस्थाओं आदि से अवगत होते हैं । इस समाज का मानना है कि घोटुल लिंगों देवता का वरदान है । वे ही घोटुल के प्रथम जन्मदाता हैं ।

निष्कर्ष:

अत: कहा जा सकता है कि आदिवासी समाज की संस्कृति समृद्ध, प्राकृतिक तत्वों से उक्त, पर्यावरण हितैषी, मानवीय एवं प्रगतिशील है। इस संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण, पशु-

ISSN no. 2454-2695
Vol 7 Issue 7 May 2021

पक्षियों, प्राणियों की रक्षा तथा स्वच्छंद, स्वतंत्र, सुखमय जीवनजीने की चेतना विद्यमान है। आदिवासी संस्कृति प्रकृति के अनुरूप विविधताओं से युक्त है तथा यह संस्कृति वन्य प्राणियों के अधिकार को मान्यता प्रदान करती है और मनुष्य को मानवीय, विवेकशील जीवन जीने की कला सीखाती है। आज के वैश्वीकरण, बाजारवाद एवं उपभोक्तावादी संस्कृति में आदिवासी संस्कृति अपना अस्तित्व बनाए रखने हेतु संघर्ष कर रही है। भोगवादी, व्यक्तिवादी पश्चिमी संस्कृति द्वारा आदिवासी संस्कृति पर प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न प्रकार के हमले हो रहे हैं चूँकि आदिवासी संस्कृति भारतीय मूल संस्कृति का अभिन्न अंग है जो आज तक आदिवासी समुदाय द्वारा संरक्षित और विकसित होती रही है किंतु इस समकालीन समय में वह अपनी पहचान खोने की कगार पर है। अत: आदिवासी संस्कृति की रक्षा तथा प्रचार प्रसार के प्रयासों द्वारा उसे समृद्ध करने की आवश्यकता है।

<u>संदर्भ ग्रंथ सूची:</u>

[1] सं. रमणिका गुप्ता, आदिवासी लोक, पृ- 44
[2] देवेंद्र सत्यार्थी, रथ के पहिए, पृ- 189
[3] सं. रमणिका गुप्ता, आदिवासी लोक, पृ- 44
[4] राकेश कुमांर सिंह, पठार पर कोहरा, पृ- 225
[5] श्रीचंद्र जैन, आदिवासियों के बीच, पृ- 24
[6] श्रीचंद्र जैन, आदिवासियों के बीच, पृ- 30
[7] राकेश वत्स, जंगल के आस-पास पृ- 52
[8] राकेश वत्स, जंगल के आस-पास पृ- 205
[9] राजेंद्र अवस्थी, जंगल के फूल, पृ- 18
[10] महुआ माजी, मरंग गोंड़ा नीलकंठ हुआ, पृ- 60
[11] महुआ माजी, मरंग गोंड़ा नीलकंठ हुआ, पृ- 60
[12] महुआ माजी,मरंग गोंड़ा निलकंठ हुआ, पृ- 60
[13] रणेंद्र, ग्लोबल गाँव के देवता, पृ- 23
[14] महुआ माजी, मरंग गोंड़ा नीलकंठ हुआ, पृ- 76
[15] महुआ माजी, मरंग गोंड़ा नीलकंठ हुआ, पृ- 76
[16] महुआ माजी, मरंग गोंड़ा नीलकंठ हुआ, पृ- 76
[17] रेशमा खालको, जनजातीय महिलाएँ, पृ- 100
[18] लोक कथा विधान, पृ- 43